



विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/निःशुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ

1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujain@gmail.com

vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

वृहत्तर भारत में रामायण
और राम
विजय परिहार

पृष्ठ क्र. 3-4

भारत के अभिलेख और
उनके विभिन्न स्वरूप
सुरेश कुमार बैरागी

पृष्ठ क्र. 5-6

विदेशी पर्यटकों के भारत
भ्रमण-वृत्तान्त
यतीन्द्र तिवारी

पृष्ठ क्र. 7

समय मापने की प्राचीन
प्रणालियाँ
मनीष रत्नापारखी

पृष्ठ क्र. 8

रघुवंश गाथा
रघुकुल की
मिथिलेश यादव

वृहत्तर भारत में रामायण और राम

विजय परिहार

वृहत्तर भारत की संस्कृति में भारतीय महाकाव्य का अपना विशेष स्थान लंबे समय से रहा है इनमें रामायण और महाभारत मुख्य रूप से शामिल है। रामकथा संसार को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की प्रेरणा देती है। राम का व्यक्तित्व और उनकी कथा इतनी सघन और व्यापक है कि उसमें सम्पूर्ण जीवन की गहराई, संघर्ष और सत्य, यथार्थ और प्रज्ञा आदि स्थितियों, चित्तवृत्तियों और भावभूमियों की अभिव्यक्ति के लिए विपुल आकाश है। रामकथा भारतीय संस्कृति का सुन्दर पुंज है। इसमें सभी प्राणियों के हित की बात है, जीवन-मूल्यों का सार है, राष्ट्र के प्रति प्रेम-भावना और त्याग है। रामकाव्य का प्रभाव भारत के जनमानस के साथ विश्व के सभी देशों पर पड़ा है। विदेशी भाषाओं में रामकथा और राम के स्वरूप की व्याख्या हुई है। रामकथा को विश्व के समग्र साहित्य में विशेष स्थान प्राप्त है और जनमानस के हृदय में राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रूप और स्वरूप भी अमिट है। एशिया के अनेक देशों की रामकथा में राम का स्वरूप सभी रचनाकारों ने अपनी-अपनी लेखनी और भावों की अपार आस्था से अभिव्यक्त कर लिखा है। संपूर्ण भारतीय समाज में राम का आदर्श रूप उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम के सभी भागों में स्वीकार किया गया है। भारत की हर एक भाषा की अपनी रामकथाएँ हैं। इसके उपरांत भारत के बाहर के देशों-फिलीपिंस, थाईलैंड, लाओस, मंगोलिया, साईबेरिया, मलेशिया, बर्मा अब म्यांमार, स्याम, इंडोनेशिया, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, चीन, जापान, श्रीलंका, वियतनाम आदि में भी रामकथा प्रचलित है। राम ने अपने युग में एकता का महान् कार्य किया था। आर्य, निषाद, भील, वानर, राक्षस आदि भिन्न संस्कृतियों के बीच सुमेल साधने का काम राम ने किया। राम शब्द का अर्थ है- 'रा' शब्द परिपूर्णता का बोधक है और 'म' परमेश्वर वाचक है। अर्थात् रमति इति रामः जो रोम-रोम में रहता है, जो समूचे ब्रह्मांड में रमण करता है वही राम हैं। भारतीय लोक-जीवन में राम-नाम की प्रभुसत्ता का विस्तार सहज देखा जा सकता है।

लोक-जीवन में रामलीला का युग-युगांतरों से समावेश मौजूद है। लोकप्रियता और व्यापकता की दृष्टि से रामलीला का हमारे जनजीवन में विशिष्ट स्थान है। इस रचना में एक समूचे समुदाय की धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति होती है। वृहत्तर भारत के अनेक देशों की संस्कृति पर रामायण की गहरी छाप है। रामकथा पर आधारित जावा की प्राचीनतम कृति 'रामायण काकावीन' जो कावी भाषा में है। यह जावा की प्राचीन शास्त्रीय भाषा है। काकावीन का अर्थ महाकाव्य है योगेश्वर द्वारा रचित यह नौवीं शताब्दी की रचना है। यह छब्बीस अध्यायों में विभक्त एक विशाल ग्रंथ है, जिसमें महाराज दशरथ को विश्वरंजन की संज्ञा से विभूषित किया गया है। इस रचना का आरंभ रामजन्म से होता है। खमेर लिपी में कंपूचिया की रामायण 'रामकेर्ति' सोलह सर्गों में प्राप्त होती है। कंपूचिया की रामायण को वहाँ के लोग 'रिआमकेर' के नाम से जानते हैं, किंतु साहित्य में यह 'रामकेर्ति' के नाम से विख्यात है। 'रामकेर्ति' खमेर साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति है। 'रामकेर्ति' और वाल्मीकि रामायण में अत्यधिक समानता है। 1238 ई. में स्वतंत्र थाई राष्ट्र की स्थापना हुई थी परंतु पहले से ही इस क्षेत्र में रामायणीय संस्कृति विकसित हो गई थी। थाईवासी परंपरागत रूप से रामकथा से परिचित थे। उस समय उसका नाम स्याम था। तेरहवीं शताब्दी में राम वहाँ की जनता के नायक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे, किंतु रामकथा पर आधारित सुविकसित साहित्य अठारहवीं शताब्दी में ही उपलब्ध होता है। राजा बोरोमकोट (1732-58 ई.) की समकालीन रचनाओं में रामकथा के पात्रों तथा घटनाओं का उल्लेख हुआ है। उन्होंने थाई भाषा में रामायण को छंदोबद्ध किया जिसके चार खंड हैं।

थाईलैंड में रामकथा पर आधारित अनेक कृतियाँ हैं। थाई रामायण में शिव की कृपा से सीता और राम का पुनर्मिलन दिखाया गया है। लाओस की संस्कृति चाहे जितनी पुरानी हो, राजनीतिक मानचित्र पर वह मध्यकाल में ही अस्तित्व में आया। लाओस राज्य की स्थापना चौदहवीं शताब्दी के मध्य हुई है। लाओस के निवासी और इनकी भाषा को 'लाओ' कहा जाता है जिसका अर्थ है 'विशाल' अथवा 'भव्य'। लाओ जाति के लोग स्वयं को भारतवंशी मानते हैं। लाओ साहित्य के अनुसार अशोक (273-237 ई.पू.) द्वारा कलिंग पर आक्रमण करने पर दक्षिण भारत के बहुत सारे लोग असम-मणिपुर मार्ग से हिंद चीन चले गए। लाओस के निवासी अपने को उन्हीं लोगों के वंशज मानते हैं। लाओस में रामकथा पर आधारित कई रचनाएँ हैं जिनमें मुख्य रूप से फ़लक-फ़लाम (राम जातक), ख्वाय थोरफी, पोम्मचक (ब्रह्म चक्र) और लंका नाई के नाम उल्लेखनीय हैं। 'राम जातक' के नाम से विख्यात 'फ़लक फ़लाम' की लोकप्रियता का रहस्य उसके नाम के अर्थ 'प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम' में समाहित है। 'राम जातक'

लाओस के आचार-विचार, रीति-रिवाज, स्वभाव, विश्वास, वनस्पति, जीव-जंतु, इतिहास और भूगोल का विश्वकोश है। बर्मा (म्यांमार) वासियों के प्राचीन काल से ही रामायण की जानकारी थी। ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि ग्यारहवीं सदी के पहले से ही वह अनेक रूपों में वहाँ के जनजीवन को प्रभावित कर रही थी। ऐसी संभावना है कि लोकाख्यानों और लोकगीतों के रूप में रामकथा की परंपरा वहाँ पहले से विद्यमान थी, किंतु बर्मा की भाषा में रामकथा साहित्य का उदय अठारहवीं शताब्दी में ही दृष्टिगत होता है। रामकथा पर आधारित बर्मा की प्राचीनतम गद्यकृति 'रामवत्थु' है। इसकी तिथि अठारहवीं शताब्दी निर्धारित की गई है। इसमें अयोध्या कांड तक की कथा का छह अध्यायों में वर्णन हुआ है और इसके बाद उत्तर कांड तक की कथा का समावेश चार अध्यायों में ही हो गया है।

रामवत्थु में जटायु, संपाति, गरुड़, कबंध आदि प्रकरण का अभाव है। रामवत्थु की कथा बौद्ध मान्यताओं पर आधारित है, किंतु इसके पात्रों का चरित्र चित्रण वाल्मीकीय आदर्शों के अनुरूप हुआ है। कथाकार ने इस कृति में बर्मा के सांस्कृतिक मूल्यों को इस प्रकार समाविष्ट कर दिया है कि वहाँ के समाज में यह अत्यधिक लोकप्रिय हो गया है। यह बर्मा की परवर्ती कृतियों का भी उपजीव्य बन गया है। मलेशिया में मलय



(मलेशिया) रामायण की प्राचीनतम पांडुलिपि बोडलियन पुस्तकालय में 1633 ई. में जमा की गई थी। इससे ज्ञात होता है कि मलयवासियों पर रामायण का इतना प्रभाव था कि इस्लामीकरण के बाद भी लोग उसके परित्याग नहीं कर सके। मलेशिया में रामकथा पर आधारित एक रचना 'हिकायत सेरीराम' तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच लिखी गई थी। इसके अतिरिक्त यहाँ

के लोकाख्यानों में उपलब्ध रामकथाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। इन कथाओं में वाल्मीकीय परंपरा का बहुत हद तक निर्वाह हुआ है, तथापि इनमें सीता के निर्वासन और पुनर्मिलन की कथाओं में विचित्रता है। जैसे राम से विलग होने पर सीता ने कहा कि यदि वह निर्दोष होंगी, तो सभी पशु-पक्षी मूक हो जाएँगे। उनके पुनर्मिलन के बाद पशु-पक्षी बोलने लगते हैं। इस रचना में अयोध्या नगर का निर्माण भी राम और सीता के पुनर्मिलन के बाद ही होता है। फिलिपींस में रामकथा को नये रूप-रंग में प्रस्तुत की गई है। इसकी कथावस्तु पर सीता के स्वयंवर, विवाह, अपहरण, अन्वेषण और उद्धार की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। तिब्बत के

लोग प्राचीन काल से वाल्मीकी रामायण की मुख्यकथा से परिचित थे। तिब्बती रामायण की छह प्रतिथियाँ तुन-हुआंग नामक स्थल से प्राप्त हुई हैं। उत्तर-पश्चिम चीन स्थित तुन-हुआंग पर 787 से 848 ई. तक तिब्बतियों का आधिपत्य था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उसी अवधि में इन गैर-बौद्ध परंपरावादी रामकथाओं का सृजन हुआ। तिब्बत की सबसे प्रामाणिक रामकथा किरस-पुंस-पा की है। किरस-पुंस-पा की रामकथा का आरंभ शिव को प्रसन्न करने के लिए रावण द्वारा दसों सिर अर्पित करने से होती है। यहाँ पर सीता रावण की पुत्री कही जाती है जिसका विवाह राम से होता है और अंत सीता सहित राम पुष्पक विमान से अयोध्या लौट गए जहाँ भरत ने उनका भव्य स्वागत किया। चीनी साहित्य में रामकथा पर आधारित कोई मौलिक रचना नहीं है। बौद्ध धर्म ग्रंथ त्रिपिटक के चीनी संस्करण में रामायण से संबद्ध दो रचनाएँ मिलती हैं। 'अनामकं जातकम' और 'दशरथ कथानम'। 'अनामकं जातकम' का कांग-सेंग-हुई द्वारा चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था जिसका मूल भारतीय पाठ अप्राप्य है। चीनी अनुवाद लिएऊ-तुत्सी-किंग नामक पुस्तक में सुरक्षित है। चीन के उत्तर-पश्चिम में स्थित मंगोलिया के लोगों को रामकथा की विस्तृत जानकारी है।

भारत के अभिलेख और उनके विभिन्न रूप

सुरेश कुमार बैरागी

अभिलेख और उनके विभिन्न रूप भारत के विभिन्न स्थानों में, विभिन्न युगों में समय-समय पर इतने अधिक अभिलेख उपलब्ध हुए हैं और आज भी निरन्तर उपलब्ध हो रहे हैं कि देश के प्रायः सभी संग्रहालयों में न्यूनाधिक रूप में उनके संग्रह देखने को मिलते हैं। अभिलेखों का इतिहास की दृष्टि से जितना अधिक महत्व है, उतना ही महत्व उनके प्रचलन और उनकी परम्परा का भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि मंत्र संहिताओं की गाथाओं ने ही संभवतः परवर्ती युग में अभिलेखों के उत्कीर्णन की परम्परा को जन्म दिया। वैदिक युग में बहुधा यज्ञ के अवसरों तथा धार्मिक उत्सवों के समय ऋषियों तथा राजाओं की वीर-वृत्तावलियों ओजस्वी वाणी में गीतिबद्ध ढंग पर उच्चरित होती थीं। उनमें चीरता, दानशीलता तथा कीर्तिमत्ता आदि गुणों का वर्णन होता था। जहाँ तक उपलब्ध अभिलेखों का सम्बन्ध है, उनमें प्रायः यशोगान, दानशीलता, पीरता, विजय आदि महनीय घटनाओं को उत्कीर्ण किया जाता था। जिस शासक ने जो विशिष्ट ख्यातियुक्त प्रशंसनीय कार्य किये, स्मारक, भवन कलाकेन्द्र तथा धार्मिक मठ-मन्दिर, बिहार आदि बनवाये, बड़े-बड़े दान दिये, उन सब को अभिलेखों में खुदवाया जाता था। अभिलेखों के ऐतिहासिक साक्ष्य के लिए उन पर तिथियाँ भी अंकित की जाती थीं। भारत में अभिलेख कब से खुदवाये गये, इस सम्बन्ध में विद्वान् एक-मत नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि सम्राट् अशोक के समय (272-232 ई० पूर्व) से अभिलेख खुदवाये जाने आरम्भ हुए। किन्तु कुछ विद्वानों का कहना है कि सम्राट् अशोक से पूर्व ही अभिलेख उत्कीर्ण किये जाने लगे थे। उदाहरणस्वरूप बस्ती से प्राप्त पिप्रा-कलश-अभिलेख और अजमेर से प्राप्त बड़ली अभिलेख का नाम लिया जाता है। इन दो अपवादों के बावजूद सामान्यतः यही कहा जा सकता है कि सम्राट् अशोक के स्तम्भ से ही अभिलेख खुदवाने की व्यापक परम्परा स्थापित हुई।

भारत के विभिन्न अंचलों में समय-समय पर ये अभिलेख अनेक रूपों ने प्राप्त हुए हैं। उनकी आधारभूत सामग्री के अनुरूप उनको अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, यथा शिलाखण्डों, स्तम्भों, प्रतिमाओं, स्तूपों, गुफाओं, ताम्रपत्रों, मुद्राओं, वेदिकाओं और आयागपट्टों आदि के रूपों में वे उपलब्ध हुए हैं। उनका उत्कीर्णन संस्कृत, पालि और प्राकृत भाषाओं में हुआ है। शिलाखण्डों पर लेख उत्कीर्ण करने का व्यापक प्रयत्न सम्राट् अशोक के समय (272-232 ई. पूर्व) से हुआ। अपने सुविस्तृत साम्राज्य में जनता को राजकीय आदेशों की जानकारी देने के लिए उसने विभिन्न अंचलों में धर्मख सुदवाये। ये शिलालेख पश्चिमीतर में मानसरोवर (जिला पेशावर तथा मोतियाश को गिरनार पर्वत से लेकर पूरच में धौनी (उड़ीसा) और उत्तर में कालसी (जिला देहरादून) से लेकर दक्षिण में वैरमुनी

(तमिलनाडु) तक भारत के विभिन्न अंचलों में उपलब्ध हुए हैं। अशोक के बाद पुष्यमित्र शुंग का अयोध्या-अभिलेख जैन खारवेल (200 ई. पूर्व) का हाथीगुम्फा अभिलेख और ईसा की दूसरी शती ई. में वर्तमान कुषाण राजा हुविष्क का मथुरा अभिलेख और कनिष्क (प्रथम शती ई.) का मानिक्याला अभिलेख का नाम उल्लेखनीय है। शिलाखण्डों पर उत्कीर्णित अभिलेखों में महाक्षत्रप रुद्रदामन का 150 ई. में उत्कीर्णित गिरनार अभिलेख का विशेष महत्व है। जैसा कि उसके नाम से ही विदित होता है, उसे पर्वत-शिला को काट कर उस पर उत्कीर्ण किया गया है। अभिलेख की विशेष बात यह है कि जहाँ अन्य शक शासकों के शिलालेख प्राकृत में हैं, वहाँ रुद्रदामन का यह अभिलेख संस्कृत में है। उसके पुत्र रुद्रसिंह का गुफालेख भी उसकी धार्मिक उदारता और भारतीयता के प्रति गहन अभिरुचि का परिचायक है।

इसी प्रकार गुप्त राजाओं में समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय का शिलालेख, कुमारगुप्त प्रथम का मन्दसौर लेख और स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख उल्लेखनीय हैं। कन्नौज के राजा यशोवर्मन और मौखरि राजा ईशानवर्मा का हरहा अभिलेख (प्रशस्ति) से भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ सिद्ध हुई हैं। प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास की निर्माणक सामग्री शिलालेखों के अतिरिक्त स्तम्भलेखों के रूप में भी प्राप्त हुई हैं। विभिन्न प्रयोजनों से स्तम्भ-निर्माण की परम्परा बहुत प्राचीन प्रतीत होती है। प्रागैतिहासिक सभ्यता के परिचायक हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ों आदि नगरों की खुदाइयों से प्राप्त सामग्री में इस प्रकार के स्तम्भों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। ये स्तम्भ संभवतः धार्मिक प्रयोजनों से निर्मित किये जाते थे। बाद में उन पर लेख भी खुदवाये जाने लगे। संभवतः पत्थरों और पहाड़ों के अभाव में स्तम्भ निर्मित किये गये और उनके द्वारा जनता तक सुगमतापूर्वक राजाज्ञा को पहुँचाया गया।

स्तम्भलेखों के खुदवाने का प्रचलन भी अशोक के ही समय में हुआ। उसने लगभग सात स्तम्भलेख उत्कीर्णित कराये, जिनमें रुपनाथ (मध्य प्रदेश), सारनाथ (उत्तर प्रदेश) लौटिया (चम्पारन, बिहार), दिल्ली, साँची और कौशाम्बी के स्तम्भलेख मुख्य हैं। इन पर अशोक ने अपने धर्मलेख खुदवाये। सम्राट् अशोक के स्तम्भ लेख एक ओर तो बौद्ध धर्म की महानताओं को अभिव्यक्त करते हैं और दूसरी ओर उसके ऐतिहासिक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं। इसी प्रकार यूनानी राजदूत हेलियोदारस (200 ई. पूर्व) ने भेलसा में अपना एक स्तम्भलेख खुदवाया। मौर्यों के बाद गुप्त शासकों के स्तम्भलेख विशेष महत्व के हैं। उनमें समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भलेख कुमारगुप्त प्रथम, स्कन्दगुप्त और भानुगुप्त के स्तम्भलेखों में उनकी विजय और वशकीर्ति का मार्मिक वर्णन किया गया है। इसी प्रकार यशोवर्मन के मन्दसौर स्तम्भ लेख में उसकी विजय और यशोगाथा का हृदयग्राही



वर्णन किया गया है। ये स्तम्भ लेख वस्तुतः एक प्रकार के कीर्ति स्तम्भ थे। जैसे-जैसे इनकी लोकप्रियता बढ़ी, उनके निर्माण प्रयोजनों में भी परिवर्तन होता गया। आरम्भ में उन्हें धार्मिक भावना के प्रचार का माध्यम बनाया गया। किन्तु बाद में विजय यह कीर्ति, स्मृति और वंश-वृत्त आदि को सुरक्षित रखने के लिए उनका निर्माण किया गया है। आधुनिक युग पर भी उनका प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय महत्त्व के भवनों, द्वारों और हुतात्माओं की स्मृति में इस प्रकार के स्तम्भ लेख आज भी खुदवाये जाते हैं। ये स्तम्भ लेख पत्थर के अतिरिक्त धातु पर भी दाग लगा हुआ है। यद्यपि बहुसांख्यिक अभिलेख प्रस्तर-स्तम्भों पर ही अंकित है, द्वैत धातु निर्मित बन्द्रगुप्त द्वितीय का मेहरौली स्तम्भ अपनी परम्परा का उदाहरण है। धर्मप्राण भारत में मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण की परम्परा जितनी व्यापक रही है उतनी ही प्राचीन भी है। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन सभी धर्मावलम्बियों ने मन्दिरों तथा मूर्तियों का निर्माण कराके अपनी धार्मिक भावना का परिचय दिया। प्रतिमा-विज्ञान सम्बन्धी प्राचीन प्राविधिक संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर मूर्तियों के निर्माण की परम्परा जितनी प्राचीन है, उन पर लेख खुदवाने का प्रचलन उतना पुराना नहीं है। फिर भी पूर्व में मौर्य युग से ही मूर्तियों पर लेख उत्कीर्णित किये जाने लगे थे। उदाहरण के लिए पटना और परखम की यक्ष-प्रतिमाओं को उद्घृत किया जा सकता है। ईसा की प्रथम शती के लगभग निर्मित बोध गया तथा मथुरा की लेखयुक्त बौद्ध मूर्तियों का नाम इस परम्परा में उल्लेखनीय है, जिनमें अधिकतर कुषाण राजाओं के लेख हैं। मथुरा के क्षेत्रों के समय भी लेखयुक्त मूर्तियों का निर्माण हुआ। गुप्त राजाओं के समय मनकुमार की बौद्ध प्रतिमा और करमदण्डा के शिवलिंग को उद्घृत किया जा सकता है। हूण राजा तोरमाण द्वारा निर्मित एरण (मध्य प्रदेश) की बाराह भगवान की विशालकाय मूर्ति पर भी प्रशस्ति अंकित है। इसी प्रकार जैन मूर्तियों और आयागपट्टों पर भी बहुसंख्यक लेख खुदे हुए मिलते हैं। ये लेख मूर्ति के शीर्ष भाग या निम्न भाग की पट्टिका पर उत्कीर्णित है। इन लेखयुक्त प्रतिमाओं से मूर्तिकला के इतिहास पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। तथागत बुद्ध के पवित्र अवशेषों (फूलों) को पात्र में रखकर भूमि में गाड़ दिया जाता था और उनके ऊपर अण्डाकार ढाँचा निर्मित किया जाता था, जिसे स्तूप नाम से कहा गया। स्तूप की वेष्टनियों (प्राकारों) तथा तोरणों (द्वारों) पर लेख उत्कीर्ण किये जाते थे। भरहुत, साँची और अमरावती के स्तूप इसके उदाहरण हैं। साँची के दक्षिण तोरण पर सातवाहन राजा सातकर्णिका का नाम और उसकी वेष्टनी पर उन अनेक व्यापारियों एवं धनिकों के नाम खुदे हुए हैं, जिन्होंने स्तूप के निर्माण में दान दिया था। इसी प्रकार भरहुत की वेष्टनी पर जातक कथाओं की ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख हुआ है। उसके पूर्वी तोरण पर अंकित लेख के आधार पर यह सिद्ध होता है कि उसका निर्माण ईसा पूर्व द्वितीय शती में शुंग युग में हुआ था। अमरावती तथा मथुरा में भी इसी प्रकार के स्तूप-अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार गुंटूर जिले के नागार्जुन पर्वत के

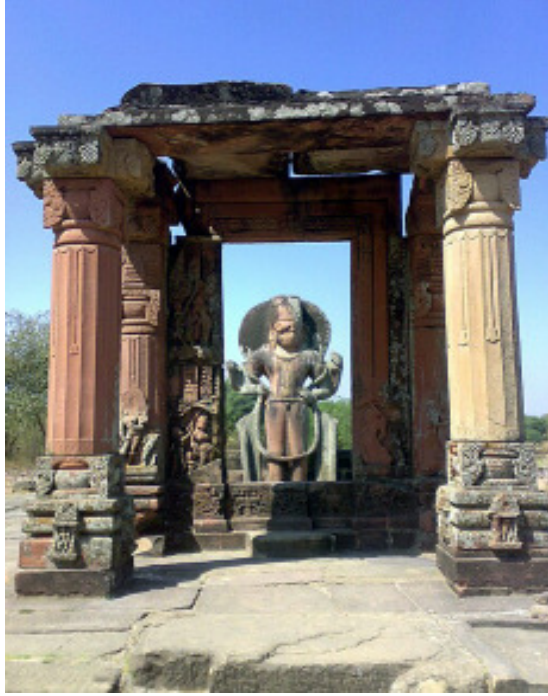
समीप प्राप्त स्तूप-अवशेषों से तीसरी शती ई. में वर्तमान वीर पुरुष दत्त के अग्निष्टोम तथा अश्वमेघ आदि यज्ञों का उल्लेख हुआ मिलता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में गुफाओं के निर्माण की परम्परा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रही है। कला-केन्द्रों के रूप में और धार्मिक अभिप्राय से इन गुफाओं का निर्माण हुआ। इन गुफाओं का निर्माण प्रायः बौद्ध धर्म के उदय के बाद हुआ। जन-कोलाहल से दूर, एकान्त जंगलों में निवास करने के उद्देश्य से ही संभवतः उनका निर्माण हुआ।

अशोक से लेकर शुंग-सातवाहनों और गुप्तों तथा उनके बाद तक निरन्तर उनका निर्माण होता रहा। इन गुफाओं के भीतर उनके संरक्षक शासकों, निर्माणक शिल्पियों और निर्माण के अभिप्रायों को शिलाओं पर उत्कीर्णित किया गया। अनेक गुफाएँ ऐसी हैं जिनका निर्माण तथा पुनरुद्धार समय-समय पर विभिन्न संरक्षक शासकों द्वारा होता गया। इस प्रकार एक ही गुफा अनेक शासकों के योगदान का इतिहास बताने के कारण उस पर उत्कीर्णित गुफालेखों का बड़ा महत्व है। इस प्रकार की प्राचीनतम गुफाओं में बराबर पर्वत (गया बिहार) की गुफाओं का नाम पहले आता है, जिन्हें अशोक ने बनवाया था। उनमें उत्कीर्णित अशोक के लेखों से विदित होता है कि उन्हें आजीवक साधुओं के निवास के लिए बनवाया था। उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट हाथीगुम्फा में सम्राट खारवेल की प्रशस्ति उत्कीर्णित है। इसी प्रकार क्षत्रप नहपान के जामाता उषवदत्त के अभिलेख नासिक जूनार तथा कार्ले की गुफाओं में सुरक्षित हैं, जिससे उनका निर्माण-काल 200 ई. पूर्व के लगभग ठहरता है। नासिक के गुफालेखों से सातवाहनों और शकों के संघर्ष के साथ-साथ उनके निर्माण काल पर भी प्रकाश पड़ता है। इस अभिलेख से उषवदत्त की दानशीलता तथा ब्राह्मणों के प्रति उसके विशेष आदर-भाव का पता चलता है। उसने ब्राह्मण कन्याओं से विवाह किया था और अजमेर के समीप पुष्कर तीर्थ में अभिषेक किया था। गुप्त युग में गुफाओं के निर्माण में प्रगति हुई। उदयगिरि की इतिहास प्रसिद्ध गुफा चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में निर्मित हुई। गुप्त युग में ही विश्वविख्यात अजन्ता की अधिकतर गुफाओं का निर्माण तथा पुनरुद्धार हुआ। वाकाटक राजा हरिषेण (600 ई.) के उपलब्ध गुफालेख से विदित होता है कि अजन्ता के निर्माण में उसका भी योगदान रहा। इसी प्रकार ग्वालियर के निकट बाघ की प्रसिद्ध गुफाओं का निर्माण लगभग ईसा की प्रथम शती से होने लग गया था और आगे की कई शताब्दियों तक होता गया। राष्ट्रकूट के राजा कृष्ण प्रथम के समय निर्मित एलोरा के कैलाश मन्दिर की प्रसिद्ध गुफा का कई दृष्टियों से महत्त्व है। सह्याद्री पर्वत (पश्चिमी घाट) में गुफाओं की संख्या सर्वाधिक है। दक्षिण में महाबलीपुरम् और जैनधर्म से सम्बद्ध उड़ीसा की मंचपुरी रानी गुफा प्राचीनता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार भज, कार्ले और काहेरी की गुफाओं का भी ऐतिहासिक महत्त्व है। आज तक वे हमारी धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना को उजागर करने में उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

विदेशी पर्यटकों के भारत भ्रमण-वृत्तान्त

यतीन्द्र तिवारी

साहित्यिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों और पुरातात्विक सामग्री के अतिरिक्त भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश डालने वाली अन्य महत्वपूर्ण सामग्री उन विदेशी यात्रियों के भ्रमण-वृत्तान्तों के रूप में भी सुरक्षित हैं, जिन्होंने आँखों देखी परिस्थितियों के आधार पर अपने अनुभवों तथा भारतीयों द्वारा मौखिक रूप में सुरक्षित घटनाओं का विश्लेषण कर उन्हें अपनी लेखनी में उतारा है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक आचार-व्यवहार की परम्पराओं और रीति-नीतियों एवं विचित्रताओं की जिज्ञासा से अनेक देशों के लोग समय-समय पर यहाँ आये। देश के विभिन्न स्थलों का भ्रमण कर यहाँ के जन-जीवन में उन्हें जो उपादेय तथा ग्राह्य अनुभव हुआ उसको उन्होंने लिपिबद्ध किया। इस प्रकार विदेशियों के ये वृत्तान्त तत्कालीन भारत के सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक जीवन की यथार्थताओं और परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त कराने में आधुनिक इतिहासकारों के प्रेरणास्रोत बने।



इस प्रकार भारत आने वाले पर्यटक विद्वान् यूनान, रोम, चीन, तिब्बत और अरब आदि विभिन्न देशों से सम्बद्ध थे। इन विद्वानों द्वारा संगृहीत भारतीय ज्ञान-सम्बन्धी कुछ तथ्य तो उनकी कृतियों के साथ ही अतीत को भेंट हो गये, किन्तु जो सुरक्षित रह पाये हैं, उनका अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्व है। इस सामग्री का अनुशीलन करने पर विदित होता है कि भारत के साथ यूनान और चीन के पारस्परिक सम्बन्ध बड़े घनिष्ठ तथा दीर्घकालीन रहे हैं। इन दोनों देशों के यात्री यद्यपि विभिन्न उद्देश्यों से भारत आये, किन्तु उनमें से कुछ के ही संस्मरण-अनुभव उल्लेखनीय हैं। प्राचीन काल में जिन अनेक यूनानी पर्यटकों ने भारत भूमि का भ्रमण किया, उनमें से स्काइलैक्स का नाम अग्रणी है। यह यूनानी फारस के शासक दारा प्रम का सैनिक था। दारा ने उसे प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी के संबंध में पता लगाने के लिए भारत भेजा था। उसके परवर्ती लेखक उसकी खोजों के जो तथ्य सुरक्षित रख पाये हैं, उनसे सिन्धु घाटी के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। उसके विवरणों के आधार पर दूसरे यूनानी लेखक हिकेटिअस मिलेटस (549-496 ई. पूर्व) न सिन्धु घाटी की, कुछ भौगोलिक स्थितियों

के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। किन्तु इन यूनानियों की खोजों के जो उद्धरण अन्य ग्रन्थों में देखने को मिलते हैं उनसे स्पष्टतः पता चलता है कि वे भारत के प्राचीन इतिहास की कोई विशेष जानकारी देने में अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हुए। प्राचीन भारत के सम्बन्ध में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण नयी जानकारी देने का श्रेय तीसरे यूनानी इतिहासकार हेरोदोलस (484-425 ई. पूर्व) को है। उसने उत्तर-पश्चिम स्थित सीमाप्रान्त (भारत) और हरमी (ईरान) के साम्राज्यों से राजनीतिक सम्पर्क स्थापित कर वहीं की जातियों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। किन्तु उसके में ऐतिहासिक वृत्त उसके द्वारा प्रायामानुभूत न होकर इतरेतर साधनों पर अवलम्बित है। जिससे उनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। इस सन्दर्भ में यूनान के प्राचीन इतिहासकार फेसिअस का नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि उसने प्राचीन भारत के सम्बन्ध में अधिकाधिक और प्रामाणिक सूचनाएँ देने का यथासाध्य प्रयत्न किया है। वह फारस के राजा अर्टाजे रेक्सस मेमन की राजसभा का राजवैद्य था। इस इतिहास-बुद्धि व्यक्ति ने फारस आये भारतीयों और भारत से लौटे फारसी व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित कर उनसे भारत के विषय में बहुविध जानकारी प्राप्त की थी। भारत-सम्बन्धी जिन तथ्यों को पुस्तकाकार रूप में उसने एकत्र किया उसका नाम इण्डिका रखा। यद्यपि उसके विवरण परानुभव-जन्य थे और इसलिए उनकी सत्यता सर्वथा असन्दिग्ध नहीं थी, तथापि भारत के इतिहास को पुस्तकबद्ध करने वाले विदेशियों में उसका स्थान अविस्मरणीय है। प्राचीन भारत पर अपेक्षया विस्तृत जानकारी देने वाली उसकी उक्त पुस्तक सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। किन्तु अन्य पुस्तकों में उसके उद्धरण मात्र देखने को मिलते हैं। उसने ईरान पर भी एक इतिहास-ग्रन्थ शर्शिकाश के नाम से लिखा था।

सिकन्दर के बाद भारत आने वाले विद्वान् इतिहासकारों एवं खोजियों में मेगास्थनीज का नाम प्रमुख है। वह प्रसिद्ध यूनानी सीरिया के सम्राट् सेल्यूकस का राजदूत था और मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय (321-297 ई. पूर्व) भारत आया था। भारत के अनेक स्थलों का भ्रमण और वहाँ की परम्पराओं का अध्ययन कर उसने भारत के तत्कालीन जन-जीवन तथा उसकी

सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत पर 'इण्डिका' नाम से एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी, जो कि सम्प्रति मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। भारत के प्राचीन इतिहास और भूगोल की जानकारी देने वाले विद्वानों में यूनानवासियों के बाद चीनी इतिहासकारों का नाम मुख्य है। बौद्धधर्म का उद्गम स्थल भारत उनकी प्रेरणा का मुख्य केन्द्र रहा है। इतिहास के उन प्रचुर तथ्यों को विस्मृत नहीं किया जा सकता है, जो भारत और चीन की मूलभूत एकता के साक्ष्य हैं। इन दोनों देशों के जन-जीवन की सामान्य मान्यताओं और विश्वासों की अभिन्नता के कारण इतिहास, साहित्य, संस्कृति, धर्म और लोक-विश्वासों के विभिन्न क्षेत्रों में इन दोनों देशों की पारस्परिक एकता अतीत की अनेक शतियों तक अटूट रूप में बनी रही।

बौद्धधर्म के माध्यम से दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध इस रूप में एकाकार हो गये कि उनके अतीत के कई सौ वर्षों तक के इतिहास को अलग करके देखा ही नहीं जा सकता है। भारत के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालने वाले चीनी विद्वानों में भारत के सांस्कृतिक इतिहास की पृष्ठभूमि शु-गा-चिन् का नाम अग्रणी है। न केवल भारतीय, अपितु चीनी इतिहास लिखने वाला यह प्रथम विद्वान था। उसका समय ईसा की प्रथम शती पूर्व या प्रथम शती के लगभग था। उसकी भारत-विषयक ऐतिहासिक सामग्री मौलिक है। प्राचीन भारत के इतिहास में चीनी बौद्ध परिराजक फहियान (399-414 ई.) हदैन्-त्सांग (629-645 ई.) और इत्सिंग (673-695 ई.) का नाम लगभग एकाकार हो गया है। यूनानी इतिहासकारों से यदि उनके विवरणों की तुलना की जाय तो दोनों में बहुत अन्तर देखने को मिलता है। इन चीनी यात्रियों ने अपने-अपने समय के भारत के धर्म शासन तथा जन-जीवन के वास्तविक चित्र अपने विवरणों में प्रस्तुत किये हैं। अन्य ऐतिहासिक स्रोतों से उनकी सत्यता सिद्ध हो चुकी है। प्रथम चीनी यात्री फाहियान गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन-काल में भारत आया था। वह लगभग सोलह वर्षों तक भारत में रहा। उसने भारत के विभिन्न बौद्ध-तीर्थों और ऐतिहासिक स्थानों का भ्रमण किया। उसका प्रमुख उद्देश्य यद्यपि बौद्ध-साहित्य का अध्ययन करना था, किन्तु उसके साथ-साथ उसने भारतीय जन-जीवन और तत्कालीन संस्कृति पर भी प्रामाणिक प्रकाश डाला है। गुप्तयुगीन स्वर्णिम भारत का उसने आँखों देखा विवरण प्रस्तुत किया है। फाहियान स्वयमेव बड़ा विद्वान् था। उसकी यही विद्वल्लिप्सा ही उसे भारत की ओर खींच लायी थी। उसने भारतीय बौद्ध विद्वानों के निकट बैठकर बौद्धधर्म का मौलिक ज्ञान प्राप्त किया था।

हवैन-त्सांग का जन्म सम्मान्त विद्वत्त्वश में हुआ था, जो कि बड़ा धर्मप्राण था। इन दोनों गुणों का उसके जीवन में समन्वय था। सात्विक वातावरण में रहकर हवेन-त्सांग का विद्यानुराग निरन्तर बढ़ता गया। वह देशाटन के लिए निकला और बीन की ही भाँति बाहर भी बौद्धधर्म की महानताओं से प्रभावित होकर वह बौद्ध भिक्षु बन गया। फिर उसने बौद्धधर्म

पर ही चिन्तन आरम्भ कर दिया। किन्तु उसको यह जानकर प्रसन्नता नहीं हुई कि बहुत घूमने पर भी उसे अपनी शकाओं का समाधान नहीं मिला। अन्त में वह बौद्धधर्म की जन्मभूमि भारत आया। कठिन तथा दुर्गम मार्ग को तयकर उसने 629 ई. को भारत में प्रवेश किया। जिस समय उसका भारत में पदार्पण हुआ उस समय यहाँ महाराज हर्ष का शासन-काल (607-647 ई.) था। भारत आकर हवैन-त्सांग ने भारतीय विद्वानों से (नालन्दा विश्वविद्यालय में) मूल बौद्ध ग्रन्थों का संस्कृत में अध्ययन किया। भारतीय विद्याओं तथा शास्त्रों के प्रति ही नहीं, भारतवासियों के प्रति भी उसका उत्तना ही आकर्षण था। उसने पंद्रह वर्षों तक भारत के सभी धार्मिक, शैक्षिक तथा ऐतिहासिक स्थानों का भ्रमण किया तथा केंद्र बिहारों के दर्शन भी किये। तत्कालीन विश्वविद्यालय नालन्दा में वह दो वर्षों तक रहा। वहीं उसे सर्वोच्च विद्वत्सम्मान मोक्षदेव की उपाधि से विभूषित किया गया। उसके भारत-भ्रमण-वृत्तान्त बड़े ही रोचक और महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से हर्षयुगीन और उसके पूर्व के भारत के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक विषयों की जानकारी देने के कारण वे भारतीय इतिहास के अंग बन गये हैं। महाराज हर्ष की राजसभा में उसका बड़ा सम्मान था। स्वयं हर्ष और उसकी धर्मप्राण बहिन राज्यश्री की स्वेन-त्सांग की विद्वत्ता और निरपेक्ष साधुवृत्ति के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। चीन में जाकर उसने अनेक बौद्ध-ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। आधुनिक पाश्चात्य इतिहासकार विन्सेण्ट स्मिथ का कहना है कि जब हौन-त्सांग चीन लौटा तो 20 घोड़ों की पीठ पर भारत से सहस्रों हस्त लिखित ग्रन्थ लाद कर ले गया था। हदैन्-त्सांग के भारत-भ्रमण-वृत्तान्तों के अतिरिक्त भारत-विषयक चीनी विद्वानों की कृतियों में हुई-ली की पुस्तक हौन-त्सांग की जीवनी भी इस दृष्टि से उपयोगी है। इस जीवनीकार ने हवेन त्सांग के उन भ्रमण वृत्तान्तों पर भी प्रकाश डाला है, जो स्वयं हवैन-त्सांग से अछूते रह गये थे। हुई-ली हौन-त्सांग का समकालीन विद्वान होने के कारण भी प्रसिद्ध है। तीसरा चीनी पर्यटक भिक्षु इत्सिंग सातवीं शती ई. के अन्त में (673-695 ई.) भारत आया था। इस चीनी विद्वान् के भ्रमण-वृत्तान्तों में मध्य-पूर्व और मध्यकालीन भारत की विभिन्न राजनीतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक स्थितियों पर प्रामाणिक प्रकाश डाला गया है। भारतीय संस्कृति और उसके उच्चादर्शी की विशेष जानकारी के लिए इत्सिंग के भ्रमण-वृत्तान्त अधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। इत्सिंग के बाद मात्वान् लिन (13 वीं शती ई.) की कृतियों और विशेष रूप से तिब्बतीय इतिहासकार लामा तारानाथ के विभिन्न ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं। यूनानी और चीनी विद्वानों के अतिरिक्त प्राचीन भारत के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट करने वाले विद्वानों में रोमन इतिहासकार एवं भूगोलवेत्ता टालेमी का नाम उल्लेखनीय है उसका स्थितिकाल ईसा की दूसरी शती के लगभग है। भारत आने वाले उत्तरवर्ती मुस्लिम-पर्यटकों में संस्कृत एवं ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् अल्बेरुनी का नाम उल्लेखनीय है।

समय मापने की प्राचीन प्रणालियाँ

मनीष रत्नपारखी

प्राचीन सभ्यताओं में समय जानने के लिये सूर्य घड़ी का इस्तेमाल किया जाता था। वैज्ञानिकों के अनुसार सूर्य घड़ी ही समय की गणना करने वाला पहला आविष्कार माना जाता है। समय को सूक्ष्म रूप से नापने के लिए पहले शंकु यंत्र तथा धूपघड़ियों का प्रयोग हुआ। रात्रि के समय का ज्ञान नक्षत्रों से किया जाता था। तत्पश्चात् पानी तथा बालू के घटीयंत्र बनाए गए। ये भारत में अति प्राचीन काल से प्रचलित थे। इनका वर्णन ज्योतिष की अति प्राचीन पुस्तकों में जैसे पंचसिद्धांतिका तथा सूर्यसिद्धांत में मिलता है। पानी का घटीयंत्र बनाने के लिए किसी पात्र में छोटा सा छेद कर दिया जाता था, जिससे पात्र एक घंटी में पानी में डूब जाता था। उसके बाहरी भाग पर पल अंकित कर दिए जाते थे। इसलिए पलों को पानीय पल भी कहते हैं। बालू का घटीयंत्र भी पानी के घटीयंत्र सरीखा था, जिसमें छिद्र से बालू के गिरने से समय ज्ञात होता था। भारत में पानी की घड़ी का उपयोग

दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व से अथर्ववेद में वर्णित है। जल घड़ी को धूप घड़ी के साथ ही सबसे पुराना समय मापक यंत्र के रूप में माना जाता है। हालाँकि जब इसका पहली बार आविष्कार हुआ, यह इतना महत्वपूर्ण हो जाएगा, इसके बारे में कोई नहीं जानता था। आज से हजारों साल पहले कटोरे के आकार की ये घड़ी का सबसे सरल रूप में जलघड़ी के रूप में भारत, चीन और मिश्र आदि देशों में अस्तित्व में आयी।

इतिहासकारों का सुझाव है कि मोहनजोदड़ो से खुदाई में मिले बर्तनों से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उस काल में जलघड़ी का प्रयोग किया गया होगा, क्योंकि खुदाई में मिले बर्तन के नीचे वाले भाग में एक पतला-सा छेद देखने को मिला है। सतवीं शताब्दी के दौरान जब चीनी यात्री ने भारत की द की थी, तब उसने नालंदा विश्वविद्यालय में जलघड़ी कैसे काम करती है, इसका विवरण दिया था। जल घड़ी में पानी की मात्रा मौसम के अनुसार बदलती रहती है। इस घड़ी को विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा संचालित किया गया था। वराहमिहिर की पंचसिद्धांतिका में भी एक पानी की घड़ी का वर्णन सूर्यसिद्धांत में दिए गए विवरण में मिलता है और गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने अपने कार्य ब्रह्मगुप्त सिद्धांत में जो वर्णन दिया है, वह सूर्यसिद्धांत में दिए गए से मेल खाता है। खगोलविद



लल्लाचार्य ने भी इस यंत्र का विस्तार से वर्णन किया है। सामान्यतः सूर्योदय से सूर्यास्त तक दिन तथा सूर्यास्त से पुनरु सूर्योदय तक रात्रि होती हैं, किंतु तिथिगणना के लिए दिन-रात मिलकर दिन कहलाते हैं। किसी स्थान पर सूर्य द्वारा याम्योत्तर वृत्त के अधोबिंदु की एक परिक्रमा को एक दृश्य दिन कहते हैं, तथा सूर्य की किसी स्थिर नक्षत्र के सापेक्ष एक परिक्रमा को नाक्षत्र दिन कहते हैं। यह नक्षत्र रूढ़ि के अनुसार माप का आदि बिंदु अर्थात् क्रांतिवृत्त तथा विषुववृत्त का वसंत संपात बिंदु

लिया जाता है। यद्यपि नाक्षत्र दिन स्थिर है, तथापि यह हमारे व्यवहार के लिए उपयोगी नहीं है, क्योंकि यह दृश्य दिन से 3 मिनट 53 सेकंड कम है। दृश्य दिन का मान सदा एक सा नहीं रहता। अतः किसी घड़ी से दृश्य सूर्य के समय का बताया जाना कठिन है। इसके दो कारण हैं: एक तो सूर्य की स्पष्ट गति सदा एक सी नहीं रहती, दूसरे स्पष्ट सूर्य क्रांतिवृत्त में

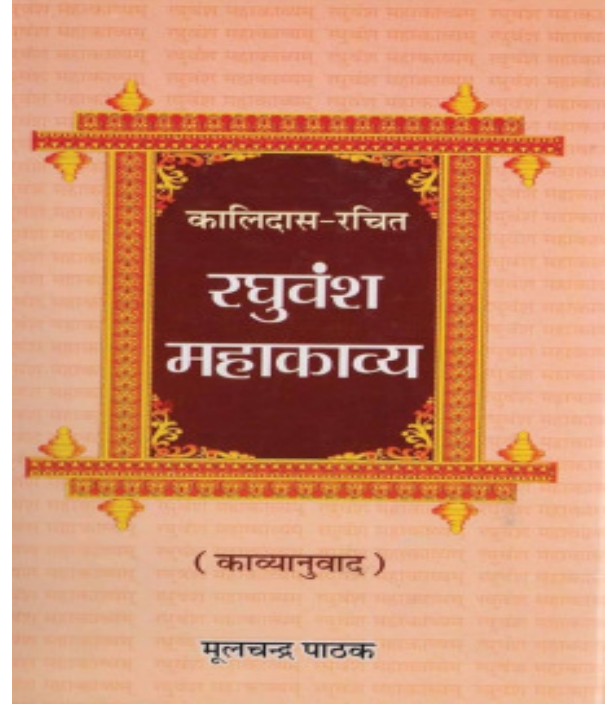
चलता दिखाई देता है। हमें समयसूचक यंत्र बनाने के लिए ऐसे सूर्य की आवश्यकता होती है, जो मध्यम गति से सदा विषुववृत्त में चले। ऐसे सूर्य को ज्योतिषी लोग ज्योतिष-माध्य-सूर्य अथवा केवल माध्य सूर्य कहते हैं। विषुववृत्त के मध्यम सूर्य तथा क्रांतिवृत्त के मध्यम सूर्य के अंतर को भास्कराचार्य ने उदयांतर तथा क्रांतिवृत्तीय मध्यम सूर्य तथा स्पष्ट सूर्य के अंतर को भुजांतर कहा है। यदि ज्योतिष-माध्य सूर्य में उदयांतर तथा भुजांतर संस्कार कर दें, तो वह दृश्य सूर्य हो जाएगा। आधुनिक शब्दावली में उदयांतर तथा भुजांतर के एक साथ संस्कार को समय समीकार कहते हैं। यह हमारी घड़ियों के समय (माध्य-सूर्य-समय) तथा दृश्य सूर्य के समय के अंतर के तुल्य होता है। समय समीकार का प्रति दिन का मात्र गणित द्वारा निकाला जा सकता है। आजकल प्रकाशित होने वाले नाविक पंचांग में, इसका प्रतिदिन का मान दिया रहता है। इस प्रकार हम अपनी घड़ियों से जब चाहें दृश्य सूर्य का समय ज्ञात कर सकते हैं। इसका ज्योतिष में बहुत उपयोग होता है। भारतीय काल गणना कि विशेषता ही ये है कि ये अचूक एवं अत्यंत सूक्ष्म है, जिसमें 'त्रुटी' से लेकर प्रलय तक कि काल गणना की जा सकती है। ऐसी सूक्ष्म काल गणना विश्व के किसी और सभ्यता या संस्कृति में नहीं मिलती।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

रघुवंश गाथा रघुकुल की

कालिदास की कृतियों के क्रम में 'रघुवंश महाकाव्य' का 'तीसरा स्थान' है। प्रथम दो कृतियाँ हैं— 'कुमारसंभव' और 'मेघदूत'। 'रघुवंश' कालिदास रचित महाकाव्य है। इसमें 'उन्नीस सर्ग' हैं, जिनमें रघुकुल के इतिहास का वर्णन किया गया है। महाराज रघु के प्रताप से उनके कुल का नाम 'रघुकुल' पड़ा। रघुकुल में ही राम का जन्म हुआ था। रघुवंश के अनुसार दिलीप रघुकुल के प्रथम राजा थे, जिनके पुत्र रघु द्वितीय थे। उन्नीस सर्गों में कालिदास ने राजा दिलीप, उनके पुत्र रघु, रघु के पुत्र अज, अज के पुत्र दशरथ, दशरथ के पुत्र राम तथा राम के पुत्र लव और कुश के चरित्रों का वर्णन किया है।

प्रभुश्री राम का रघुवंश महाकाव्य में विशेष रूप से वर्णन किया गया है। रघुवंश कालिदास की सर्वाधिक प्रौढ़ काव्यकृति है। 'कुमारसंभव' की तुलना में इसका फलक विस्तीर्णतर है। अनेक चरित्रों और नाना घटना प्रसंगों की वज्रसमुत्कीर्ण मणियों को कवि ने इसमें एक सूत्र में पिरो दिया है और उनके माध्यम से राष्ट्र की गौरवशाली परम्पराओं, आस्थाओं और संस्कृति की महतनीय उपलब्धियों की तथा समसामयिक सामंतीय समाज के अधःपतन की महागाथा उज्ज्वल पदावली में प्रस्तुत कर दी है। दिलीप और रघु जैसे उदात्त चरित्रों के आख्यान से आरम्भ कर राम के चरित्र को भी रघुवंश प्रस्तुत करता है और 'अग्निवर्ण' जैसे विलासी राजा को भी। रघुवंश की कथा का आरंभ महाराज दिलीप से होता है। कालिदास ने दिलीप के पहले के राजाओं की चर्चा करते हुए कहा है कि इस वंश का प्रादुर्भाव सूर्य से हुआ है और इसमें मनु पृथ्वी-लोक के सर्वप्रथम राजा हैं। उस मनु वंश में राजा दिलीप हुए। रघुवंश में दिलीप के विषय में तीन सर्ग हैं, जो महाराज रघु के प्रादुर्भाव की भूमिका रूप में हैं। रघु के नाम पर रघुवंश नाम इस महाकाव्य को दिया गया है। रघु कालिदास का आदर्श राजा है, क्योंकि वह दिग्विजयी था। पुत्रविहीन राजा दिलीप अपनी पत्नी 'सुदक्षिणा' सहित पुत्र लाभ की कामना से कुल गुरु वसिष्ठ के आश्रम में जाते हैं। वसिष्ठ उनकी व्यथा का कारण जान अपने आश्रम में निवास करने वाली कामधेनु पुत्री नन्दिनी नामक गौ की सेवा का परामर्श देते हैं। दिग्विजय का आख्यान चतुर्थ सर्ग में है। दिग्विजय के प्रसंग से समग्र भारत के विविध प्रदेशों में रघु को घुमाते हुए कवि को उन-उन प्रदेशों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए राष्ट्रीय एकता का आभास कराना अभीष्ट प्रतीत होता है। राजा पत्नी सुदक्षिणा सहित एकाग्रचित्त से नन्दिनी की सेवा में संलग्न हो जाते हैं। कुछ काल व्यतीत होने पर नन्दिनी राजा के भक्ति-भाव की परीक्षा लेने को उद्यत होती है। वह चरती हुई, हिमालय पर्वत की कन्दरा में प्रविष्ट हो जाती है, गुफा में एक



सिंह नन्दिनी पर आक्रमण करता है। राजा नन्दिनी को मुक्त करने के लिए सिंह से याचना करते हैं। सिंह राजा का शरीर लेकर गाय को मुक्त करने को तैयार हो जाता है। राजा सिंह के समक्ष स्वशरीर अर्पण कर देते हैं। नन्दिनी राजा के इस भक्ति भाव से प्रसन्न हो पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देती है और अपना दुग्ध पीने का निर्देश देती है। राजा आश्रम में लौट कर महर्षि वसिष्ठ को सम्पूर्ण वृतांत से अवगत करा, गुरु की अनुमति से गाय का दूध पीते हैं तथा उद्देश्य की पूर्ति से प्रसन्न राजधानी लौट आते हैं। रघुवंश के स्त्रोत के लिए कालिदास महर्षि वाल्मीकि के प्रति विशेष श्रद्धाभाव रखते वाल्मीकि रामायण में बालकाण्ड, तीसरे सर्ग के नवें श्लोक तथा युद्धकाण्ड के प्रथम सर्ग के ग्यारहवें श्लोक में 'रघुवंश' शब्द का प्रयोग हुआ है और चतुर चितेरे कालिदास ने ग्रंथ का नामकरण के लिए वहीं से शब्द ग्रहण कर लिया है। नवम सर्ग से पन्द्रहवें सर्ग तक कालिदास ने राम कथा के गान हेतु वाल्मीकि रामायण को आधार माना है। वाल्मीकि रामायण में लगभग 24,00 श्लोक हैं, जिनमें से कालिदास ने स्वावश्यकतानुरूप सामग्री ग्रहण की है, कुछ का स्पर्श किया है तो कुछ का नामोल्लेख मात्र। निश्चित रूप से कवि ने राजाओं की सूची एवं तत्सम्बद्ध आख्यान अनेक स्त्रोतों से ग्रहण किये हैं, किंतु उनके द्वारा प्रयुक्त ये अनेक स्त्रोत अभी अन्धकार में हैं।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujain@gmail.com, vikramadityashodhpeth@gmail.com